For M.A. Semester - I
Philosophy - CC - 04

भारतीय दर्शन में लोक संग्रह

डा0 रागिनी कुमारी
सहायक प्रोफेसर
दर्शनशास्त्र विभाग
महाराजा कॉलेज, आरा

भारतीय दर्शन में लोक संग्रह की अवधारणा का वर्णन कई जगह मिलता है, किन्तु मुख्य रूप से लोक संग्रह शब्द का प्रयोग श्रीमद्भगवद् गीता के तीसरे अध्याय में मिलता है। लोक संग्रह शब्द लोक और संग्रह जैसे दो शब्दों के योग से बना है। लोक शब्द का अर्थ सम्पूर्ण विश्व से लिया गया है तथा संग्रह शब्द का अर्थ संचय करने से है। अतः लोक संग्रह शब्द का शाब्दिक अर्थ सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिए संचय करने से है। संचय करना बिना कर्म किए संभव नहीं है। गीता में कर्म करने की प्रधानता दी गई है, किन्तु गीता के अनुसार मनुष्य को निष्काम कर्म करना चाहिए। कर्म करना गीता का मुख्य नैतिक उपदेश माना जाता है। गीता कर्म सन्यास की निन्दा करती है तथा कर्मयोग की प्रशंसा करती है। गीता के अनुसार मानव को प्रकृति द्वारा निर्धारित स्वधर्म अर्थात् अपना कर्म जो वस्तुतः नियम है अवश्य करना चाहिए, किन्तु गीता के अनुसार यह कर्म अपने हित के लिए नहीं वरन् लोक संग्रह के लिए किया जाना चाहिए। हमारे पास जितनी सामग्री, समय, सामर्थ्य और समझ है उसी से हम दूसरों की सेवा करें तो वह सेवा लोक कल्याणकारी होगी। बिना किसी भेदभाव के सबको अपने समान समझकर सबकी भलाई के लिए कार्यशील रहनेवाला व्यक्ति ही लोक संग्रह का कार्य करता है। लोक संग्रह गीता का मुख्य सामाजिक एवं नैतिक आदर्श है। यह एक विशिष्ट सारगर्भित शब्द है।

गीता में कृष्ण अर्जुन से कहते है कि जनक आदि ज्ञानीजन कर्म के द्वारा ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। अतः लोक संग्रह को देखते हुए तेरे लिए कर्म करना उचित है। साथ ही कृष्ण स्वयं का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन मुझे

Scanned with CamScanner

तीनों लोकों में न तो कोई कर्त्तव्य है न प्राप्त करने योग्य कोई वस्तु अप्राप्त है, फिर भी मैं कार्यरत हूँ। [1] पुनः कृष्ण कहते हैं कि वस्तुतः ईश्वर का अवतार लेना लोक संग्रह के लिए ही होता है। "जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अपना साकार रूप लेकर लोगों के सामने प्रकट होता हूँ।" [2] यहाँ कृष्ण का प्रकट होना लोक संग्रह के लिए यानि लोगों के कल्याण के लिए हुआ करता है। इसमें कृष्ण का कोई स्वार्थ नहीं हैं। गीता में कहा गया है कि साधु पुरूषों के उद्धार के लिए दृष्टों के विनाश के लिए और धर्म की अच्छी तरह स्थापना करने के लिए कृष्ण युग-युग में प्रकट होते हैं। ये सारे कर्म लोक संग्रह के लिए किए जाते हैं।

गीता का कहना है कि स्वार्थ से किए गये कर्म तुच्छ और बन्धक कारक होते हैं। बन्धन को तोड़ना और मुक्ति का आनन्द लेना ही मानव का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वार्थ युक्त कार्य अभिष्ट नहीं है। गीता में सर्वभूत हित को सर्वोच्च आदर्श माना गया है। [3] जो व्यक्ति समस्त जीवों (भूतों) के हित में कार्य करता है वह ईश्वर को प्राप्त होता है। [4] सर्वभूत कल्याण को परम आदर्श के रूप में मान्यता देते हुए गीता में स्वधर्म के पालन पर बल दिया गया है। यहाँ इस बात का वर्णन है कि गुण और कर्म के आधार पर जो चार प्रकार वर्ण की रचना हुई है, उन वर्णो के लिए निर्धारित कर्म करना ही स्वधर्म है। इसे ही सहज कर्म, स्वकर्म, नियम कर्म, स्व-धर्म कर्म, स्वभाव नियत कर्म आदि कहा गया है। अतः स्पष्ट है कि यहाँ धर्म शब्द को कर्म अथवा कर्त्तव्य के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। यहाँ कर्म को श्रेष्ठ मानते हुए कहा गया है आकर्षक परमधर्म से गुणरहित लगने वाला स्वधर्म ही श्रेष्ठ है। कोई स्वभाव से नियत कर्म को करता है तो वह पाप का भागीदार नहीं होता है।[5] गीता स्पष्ट कहती है कि दोषयुक्त होने पर भी सहजकर्म का त्याग नहीं करना चाहिए, क्योंकि जिस प्रकार धुएँ अग्नि आकृत रहती है उसी प्रकार सभी कर्म किसी न किसी दोष से आवृत रहते हैं।[6] प्रत्येक कर्म के दोष से आवृत होने के बावजूद भी आसक्ति रहित कर्म करनेवाला व्यक्ति नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होता है।

Scanned with CamScanner

स्वधर्म के पालन के लिए यदि कोई युद्ध भी करता है तो गीता उसे क्षत्रिय के लिए कल्याण कारक कर्म कहती है।

गीता के अनुसार सामाजिक हित के स्वधर्म का पालन व्यक्ति को अपने कर्म के लिए निर्धारित कर्त्तव्य के पालन के रूप में करना चाहिए। गीता के स्वीकृत चारों वर्णो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र का विभाजन गुण और कर्म के आधार पर किया गया है।[7] प्रत्येक वर्ण के सदस्य को अपने वर्ण के लिए निर्धारित कर्म को फलेच्छा से रहित होकर करना आवश्यक है। ऐसा नहीं करने वाले व्यक्ति को कर्त्तव्यच्यूत समझा जाता है और गीता कहती है कि इस गतिशील सृष्टि मे अगर एक भी व्यक्ति कर्त्तव्यच्यूत होता है तो उसका प्रभाव सम्पूर्ण सृष्टि पर पड़ता है।[8]

इस प्रकार हम पाते हैं कि गीता में गुण और कर्म के आधार पर विभाजित वर्ण व्यवस्था को महत्व देते हुए निष्काम भाव से स्वधर्म का पालन करने पर बल दिया गया है। गीता के उस उपदेश को हमारे समाज एवं राष्ट्र को अपनाना चाहिए। अगर इसे हमारे समाज में मान्यता दी जायेगी तो समाज से भ्रष्टाचार का अन्त किया जा सकेगा। गीता किसी एक वर्ग, सम्प्रदा, देश या व्यक्तिं के लिए न होकर सबके लिए समान रूप से ग्राह्य है। गीता एक सार्वभौम जीवन दर्शन की पुस्तक है। गीता की यह असाधारण विशेषता व्यापक विचारजगत के लिए सामान्य रूप से ग्राह्य है। गीता में वर्णित लोक संग्रह के विचार में सत्य, अहिंसा, त्याग, निरपेक्षता, समत्व, कर्म, ज्ञान और उपासना सभी का समन्वय है। गीता का मुख्य उद्देश्य कल्याणकारी कर्त्तव्य का उपदेश देना है। गीता की कर्म दृष्टि व्यक्ति-व्यक्ति को उसके नियत कर्त्तव्य के लिए प्रेरित करती है और साथ ही यह भी निर्धारित करती है कि एक का दूसरे के प्रति क्या कर्त्तव्य है। दूसरे की उपेक्षा करके किया गया कोई भी कर्म गीता की दृष्टि से हेय है। ग्राह्य तभी हो सकती है जब उसमें सर्वांगीण दृष्टि हो।

स्वार्थ की छाया में किये गये कर्त्तव्य गीता को स्वीकार्य नहीं है। लोक कल्याण की भावना एक सार्वभौमिक भावना है, जिसमें एक व्यक्ति की यहाँ

Scanned with CamScanner

तक कि कर्त्ता के अधिष्ठाता परमेश्वर की भी एक जैसी स्थिति है। अतः गीता का कहना है कि सर्वभूत हित के लिए विद्वान पुरूष को अनासक्त होकर कार्य करना चाहिए।[9] आसक्ति रहित एवं हेतु रहित होकर समस्त भूतों के प्रति अहिंसा, अक्रोध, अद्रोह, करूणा, सत्य, सद्भावना, परहित, परोपकार आदि धर्मो का पालन करना दैवीय सम्पदा के लक्षण माने गये हैं।[10] देवी सम्पदा देव तुल्य पुरूष के गुण हैं। इनके अभ्यास से मनुष्य परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

लोक संग्रह की अवधारणा शंकर एवं रामानुज के दर्शन में भी मिलती है। शंकर के अनुसार मोक्ष प्राप्त व्यक्ति ब्रह्म से अभेद स्थापित कर लेता है। ऐसे व्यक्ति के लिए कोई कार्य शेष नहीं रहता । मुक्त पुरूष सभी कार्यो को स्वतः स्फूर्ति से केवल शरीर के धर्म समझकर करता है। वह आप्त काय बन जाता है। मुक्त पुरूष के लिए नैतिक जगत् का शुभ और अशुभ का द्वैत समाप्त हो जाता है। वह नैतिकता का अतिक्रमण कर जाता है। अब वह स्वभाववश नैतिक कार्य करता है। वह सभी कर्मो को करते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होता।

तैतिरीयोपनिषद् में भी कहा गया है "प्रथम् 'सत्यवद' 'धर्मचर' इत्यादि उपदेश करने के पश्चात् अन्त में संसार में किसी अवसर पर कैसा आचरण करें ऐसा संशय तुम्हारे मन में उपस्थित होने पर ज्ञानी, युक्त और ब्राह्मण ऐसे प्रसंग में जैसा आचरण करेंगे इसका विचार कर उसके अनुसार आचरण किया करो।[11]

निष्कर्षतः हम पाते है कि लोक संग्रह की अवधारणा भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों में पाई जाती है। किन्तु मुख्य रूप से इसका वर्णन गीता में ही किया गया है। गीता में इसे नैतिक मानक के रूप में माना गया है तथा कहा गया है कि कर्त्ता को कर्म करने में कर्त्तव्याभिमान को छोड़कर ज्ञानी पुरूष की तरह लोक हित के लिए कार्य करना लोक संग्रह है।

Scanned with CamScanner

संदर्भ सूची

1. गीता – 3/22
2. गीता – 4/7
3. गीता – 11/55
4. गीता – 12/4
5. गीता – 18/47
6. गीता – 18/48
7. गीता – 41/13
8. बाल्मीकि रामायण – उत्तर काण्ड पृष्ठ 73,76
9. गीता – 3/25
10. गीता – 16/2-3
11. (तै. 1.11.4) उधृत- श्री भद्भगवद्गीता रहस्य,
    बाल गंगाधर तिलक: हिन्दी अनुवादक
    डा0 मोहन ब0 वांडे - तीसवाँ संस्करण
    डा0 दीपक ज0 तिलक

Scanned with CamScanner